'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय' अमृतचन्द्राचार्यकृत है। १५ वीं गाथा।

विपरीताभिनिवेशं निरस्य सम्यग्व्यवस्य निजतत्त्वम्।
यत्तस्मादविचलनं स एव पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम्।।१५।।

www.vitragvani.com

पुरुष अर्थात् चैतन्यस्वरूप आत्मा; उसका अर्थ अर्थात् प्रयोजन की सिद्धि, उसका उपाय क्या है—वह इस गाथा में है। यह इस पुस्तक का नाम है।

टीका – जो विपरीत श्रद्धान का नाश करके.... विपरीत श्रद्धान का नाश करने के दो बोल पहले आ गये। पाँचवीं गाथा में ऐसा आया कि अतिशयरूप से निश्चयनय से विरुद्ध ऐसा व्यवहारनय का जो अभिप्राय, वह सर्व संसार है। समझ में आया? पाँचवीं गाथा में आया – **'प्रायः भूतार्थबोधविमुखः सर्वोऽपि संसारः'** यह पहले आया था। कि निश्चयनय के बोध से विपरीत ऐसा व्यवहारनय का जो अभिप्राय। दूसरा इसका अर्थ क्या? कि भूतार्थ बोध विमुख। जब भूतार्थबोध सन्मुख। यथार्थ चैतन्यस्वरूप की सन्मुखता का बोध, वह निश्चय है। उससे विपरीत का बोध जितना हो, परलक्ष्य करावे, पर विषय में जो लक्ष्य जावे—ऐसे भाव को अपना मानना अथवा उन्हें इष्ट की सिद्धि (का) उपाय मानना, इसका नाम मिथ्यात्व है, उसे सर्व संसार कहने में आता है। यह पाँचवीं गाथा में कहा गया है।

१४ वीं गाथा में उसे ही ऐसा कहा था कि जो कुछ कर्मकृत से उत्पन्न हुए जीव की पर्याय में पुण्य और पाप के भाव, (उनसे) रहित चैतन्यस्वरूप है; उसे सहित मानना, वह भव का बीज है। समझ में आया? चैतन्यस्वरूप आत्मा यह, दूसरी भाषा में कहें तो अजीव और आस्रव से भिन्न है; उसे आास्रव और अजीवसहितवाला मानना, वही संसार का मिथ्यात्वरूपी बीज है। समझ में आया? ये दो—पाँचवीं और चौदहवीं—दोनों के भाव का नाश करना—ऐसा यहाँ कहते हैं।

आत्मा का शुद्धस्वभाव, उससे सन्मुखता से विरुद्ध जितने परसन्मुखता के विकल्प आदि उठते हैं, वे संसार का मूल कारण है। समझ में आया? वे सर्व संसार ही हैं। यहाँ ऐसा कहा कि कर्मकृत उपाधि के परिणाम, जो स्वभाव में नहीं और जो स्वभाव के आश्रय से हुए नहीं, वे कर्म के निमित्त के आश्रय से हुए शुभ-अशुभभाव, वह उपाधिभाव है। इन दोनों प्रकार के—घातिकर्म के सम्बन्ध में उत्पन्न हुए राग-द्वेष आदि; अघातिकर्म के सम्बन्ध में उत्पन्न हुए संयोग शरीरादि अर्थात् दो कर्म—घाति-अघाति के दो प्रकार। समझ में आया? घाति ज्ञानावरणी आदि चार कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुई आत्मा की विकारी /

www.vitragvani.com

विपरीत आदि पर्याय और अघातिकर्म से प्राप्त हुए बाह्य संयोग अर्थात् आठों कर्मों का फल-दो। इसे चैतन्यस्वरूप के साथ मानना। उस चैतन्यस्वरूप के साथ अशुद्धभाव और संयोगीभाव नहीं है। समझ में आया? अथवा वह अशुद्धभाव और संयोगी चीज़ में से आत्मा के हित के लिये वह चीज़ है—ऐसा मानना, वही संसार का बीज है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोग-बंयोग, उसके लक्ष्य से हुआ विकल्प; वाणी है वह तो अघाति का फल-संयोग है। वस्तु जो चैतन्य आनन्द और ज्ञायकमूर्ति पदार्थ है, उसमें—स्वभाव में नहीं है, उसकी त्रिकाली शक्तियाँ—स्वभाव / गुण में नहीं है और वर्तमान दशा में चार घातिकर्म के निमित्त से हुई हीन—विपरीत अवस्था आदि को अपने चैतन्य के अभेदस्वरूप के साथ उसे मानना और अघातिकर्म के निमित्त से प्राप्त संयोग—शरीर, वाणी आदि सब बाहर का। उससे आत्मा सहित है अथवा उससे आत्मा को लाभ होता है—यह मानना, वह संसार का बीज है, अर्थात् मिथ्या अभिप्राय है। कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति वस्तु (है)। उसे कर्म के दो प्रकार के सम्बन्ध से हुई उपाधि और संयोग से यहाँ लाभ मानना अथवा उनसे सहित मानना, इसका नाम मिथ्यादर्शन—संसार का बीज कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? घाति के निमित्त से उत्पन्न हुआ शुभभाव—उससहित जीव को मानना और उससे लाभ मानना, यह मिथ्यात्व अभिप्राय है और जो बाह्य संयोगी चीज़ मिली—शरीर, वाणी, बाह्य पदार्थ—उनसे सहित मानना अथवा उनसे लाभ मानना... समझ में आया? इसका नाम संसार का महा मिथ्यात्व बीज है। कहो, शशीभाई! यह तो सीधी-बहुत सादी भाषा में है, इसमें कोई बहुत गहरा नहीं है। खोडीदासभाई!

कहते हैं कि इस प्रकार यह आत्मा, कर्म द्वारा किये गये अनेक प्रकार के भाव से संयुक्त नहीं है। है? अर्थात् व्यवहार का विषय रागादि है और बाह्य पदार्थ है, असद्भूत व्यवहार का विषय। ऐसे देखो तो अन्दर उसे व्यवहार को पाँचवीं गाथा में '**सर्वोऽपि संसार**' कहा था। यह ऐसा कहा कि इन घाति-अघाति कर्मों के निमित्त से उत्पन्न हुआ उपाधिभाव यह। इस भाव से आत्मा संयुक्त नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : किसी नय से नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारनय से है, यह तो कहा परन्तु वह हेय है-छोड़ने के लिये है। यह तो यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! '**सर्वोऽपि संसार**' इसीलिए तो पाँचवीं में कहा कि '**भूतार्थबोधविमुख सर्वोऽपि संसारः**' '**प्रायः**' अर्थात् अतिशयरूप से, विशेषरूप से, खासरूप से।

भगवान आत्मा के स्वरूप के सन्मुख बोध से विपरीत बोध, अकेले व्यवहारनय का ज्ञान। बाहर का, उसे व्यवहार यथार्थरूप से होता नहीं परन्तु व्यवहार कहने में आता है। 'बन्ध अधिकार' (समयसार) में लिया है न? अभव्य भी व्यवहारनय से व्यवहार का कुछ ऐसा करता है। समझ में आया? अर्थात् भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द का पवित्रधाम है, उसके सन्मुख की बुद्धि अर्थात् यह तो हो गया भूतार्थ-आश्रय से सम्यग्दर्शन जो कहा ग्यारहवीं (गाथा) में, वह तो सन्मुख हुआ, वह तो वस्तु के सन्मुख हुआ, यह दृष्टि यथार्थ है। उससे विमुखता का जितना भाव—पुण्य-पाप और संयोग—इनसे लाभ मानना और इनसे सहित मानना, वही मिथ्यादर्शन, शल्य और संसार का बीज है। कहो, समझ में आता है या नहीं इसमें?

तथापि.... कहते हैं, यहाँ आया न? विपरीत श्रद्धान का नाश करके। जो (गाथा) १४ में कहा था न? **भावों से संयुक्त नहीं है तो भी अज्ञानी जीवों को अपने अज्ञान से, अपने अज्ञान से आत्मा कर्मजनित भावों से संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है।** यह १४ में (कहा था)। उसे यहाँ नाश का उपाय कहा है।

१५ (गाथा की टीका) **जो विपरीत श्रद्धान का नाश करके....** यह विपरीत श्रद्धा अर्थात् पाँचवीं और चौदहवीं में कहा वह। उसकी श्रद्धा का नाश करके—एक बात, यह सम्यग्दर्शन। **यथार्थरूप से निजस्वरूप को जानकर....** यह दूसरा बोल—सम्यग्ज्ञान। यथार्थरूप से निज स्वरूप को जाने, ऐसा; पर को जानने की बात नहीं रही, दो बात। **फिर अपने उस स्वरूप से भ्रष्ट न होना,....** और अपना शुद्धस्वरूप वीतरागी समरसी स्वरूप है, उसमें से च्युत न हो; **वही पुरुषार्थ की सिद्धि होने का उपाय है।** अर्थात् चारित्र हुआ। रागादिक में न आवे और स्वरूप की श्रद्धा होकर, स्वरूप का ज्ञान होकर,

www.vitragvani.com

स्वरूप में स्थिरता को प्राप्त हो; स्वरूप के श्रद्धा-ज्ञान से-स्वरूप से भ्रष्ट न हो। राग में जाए तो स्वरूप से भ्रष्ट है। चाहे तो शुभराग में जाए तो भी स्वरूप से अस्थिरपने में भ्रष्ट है, श्रद्धारूप से भ्रष्ट भले न हो। समझ में आया?

आचार्य ने तो कहा है न कि **विदूषाम्**- विद्वानों के लिये मैं यह आगम में से पुरुषार्थसिद्धि उपाय का उद्धार करता हूँ, ऐसा कहा है, चौथी गाथा। समझ में आया? तत्त्व के मर्म को समझाने के लिये पूरा 'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय' 'परमागम' में से उद्धार किया है। देखो! ये तीनों व्याख्या आ गयी—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। आत्मा पुरुष अर्थात् चैतन्यस्वरूप, उसका अर्थ अर्थात् प्रयोजन, उसकी सिद्धि अर्थात् सुख की प्राप्ति, उसका यह उपाय है। समझ में आया?

भावार्थ : पहले जो कहा था कि संसार की बीजभूत कर्मजनित पर्याय को आत्मरूप से-अपनेरूप जानने का नाम ही विपरीत श्रद्धान है.... स्पष्टीकरण किया। विपरीत श्रद्धा का नाश करना। वह विपरीत श्रद्धान अर्थात् क्या? यह १४ वीं गाथा का न्याय दिया। संसार में भटकने का बीज, (यह विपरीत श्रद्धान है।) स्वभाव शुद्ध है, वह मोक्ष का बीज है। शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, निर्विकल्प वीतराग समरसीस्वरूप, वह तो मोक्ष का बीज है और संसार का बीज—कर्मजनित पर्याय को, कर्म के संग से हुआ शुभाशुभ उपाधिभाव या बाह्य (संयोग), उन्हें अपनेरूप जानना। उस शुभराग आदि को और शरीरादि को—कर्म मेरे, परवस्तु मेरी—ऐसे स्व में नहीं, उन्हें मेरेरूप (निजरूप) मानना, इसका नाम ही विपरीत श्रद्धान कहलाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

जिसमें जो नहीं है, उसे उससे (सहित) मानना, इसका नाम विपरीत मान्यता है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, उसमें ये पुण्य-पाप के विकार भी नहीं और शरीरादि की क्रिया या शरीरादि की पर्याय उसमें नहीं। समझ में आया? कहाँ के कहाँ ले गये, देखो न! सजीव और अजीव क्रिया की क्रिया—जीवित शरीर की क्रिया धर्म का कारण है या नहीं? आहाहा! ओहोहो! उल्टा पड़ता है परन्तु ऐसा पड़ता है न!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान शुद्ध चैतन्य ज्ञायकमूर्ति, वह आत्मा (है)। पुण्य-पाप के भाव, कर्म निमित्त से उत्पन्न हुए आस्रवतत्त्व और बाह्यतत्त्व उत्पन्न हुआ शरीर आदि,

www.vitragvani.com

वह अजीवतत्त्व, इसलिए वे जीव नहीं—ऐसा वह तत्त्व। ये सब आस्रवतत्त्व या अजीव अर्थात् यह जीव नहीं, ऐसे सब तत्त्व; उनकी किसी भी पर्याय से आत्मा को लाभ होता है, उस पर्यायसहित आत्मा है—ऐसा मानने का नाम विपरीत अभिप्राय है। कहो, चन्दुभाई! यह तो बहुत सादी, अच्छी संक्षिप्त भाषा में है। प्रवीणभाई! शरीर मेरे में है—ऐसा मानना, यह विपरीत मान्यता / मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : मेरे में न हो तो मेरे उसे....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो मेरे में है तो मेरे में होवे तब मेरा होवे और इस बिना कहाँ से हो? मेरा है, इसका अर्थ कि मेरे में है। मेरा है, इसका अर्थ कि मेरे में है। कहो, समझ में आया यह?

संसार का बीजभूत, संसार की उत्पत्ति की खान कर्मजनित पर्याय को अपनेरूप जाने। बहुत संक्षिप्त बात। स्वद्रव्य के स्वभाव की पर्याय नहीं, स्वस्वभाव की निर्मलपर्याय नहीं। निर्मलपर्याय तो स्वभाव में से प्रगट होती है, (सवभाव के) आश्रय से प्रगट होती है। यह विकारी पर्याय, स्वभाव के आश्रय से नहीं, स्वभाव में नहीं; निमित्त के आश्रय से उत्पन्न हुई क्षणिक उपाधि है। शुभ या अशुभराग और बाह्य पदार्थ, जिन्हें जगत अनुकूल-प्रतिकूल कहता है; यहाँ शुभ-अशुभ, वहाँ अनुकूल-प्रतिकूल दोनों पर हैं, दोनों आत्मा में नहीं है। समझ में आया? व्यवहाररत्नत्रय भी शुभराग है। समझ में आया? वह भी कर्म के निमित्त से हुआ उपाधिभाव है। वह भाव, आत्मा में है या उससे आत्मा को लाभ होता है, यह अभिप्राय, संसार का बीज है। समझ में आया?

उसका मूल से विनाश करना ही सम्यग्दर्शन है। विपरीत अभिप्राय—मलिन परिणाम और संयोगी चीज़, वह मुझमें है—ऐसा जो विपरीत अभिप्राय। यह मेरे ज्ञानस्वरूप चैतन्य शुद्ध हूँ—ऐसे एकाग्र अभिप्राय से उसका (विपरीत अभिप्राय का) नाश करना और स्वभाव शुद्ध चैतन्य है, उसकी प्रतीति, स्वरूप की एकाग्रता करके करना, इसका नाम विपरीत अभिनिवेश का नाश (है), इसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया?

विपरीत अभिनिवेश का व्यय, अविपरीत अभिप्राय की उत्पत्ति। अविपरीत अर्थात् जैसा शुद्ध चैतन्यमूर्ति स्वरूप है, उसके अभिप्राय की उत्पत्ति। वस्तु तो वस्तुरूप से है।

www.vitragvani.com

कहो, समझ में आया इसमें? यह भारी कठिन पड़ता है व्यवहारवालों को। आचार्य कहते हैं, हम अबुध को—अज्ञानी को व्यवहार से उपदेश देते हैं। यदि उस व्यवहार को ही पकड़कर बैठेगा तो वह सुनने के योग्य नहीं है। हमें सुनाना क्या उसे? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ६ वीं गाथा में कहा '**अबुधस्य बोधनार्थं**' अज्ञानियों को समझाने के लिये व्यवहार से भेद पाड़कर बात की है। वहाँ भेद पाड़कर बात करने पर, वह भेद ही वस्तुस्वरूप, साधन है—ऐसा मान ले, उसे किस प्रकार समझाना किस प्रकार? कहते हैं। समझ में आया?

भेदसहित, भेद से समझाया, परन्तु वस्तु भेदसहित नहीं। समझ में आया? दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा—ऐसा भेद से कहा, परन्तु उस भेदस्वरूप आत्मा नहीं है। इसीलिए तो वहाँ (समयसार) ८ वीं गाथा में कहा कि हम भेद से कहते हैं, परन्तु हमें और तुझे दोनों को भेद अनुसरण योग्य नहीं है। व्यवहारनय नहीं अनुसरण करनेयोग्य। यह तो विकल्प उठा है तो समझाने को भेद पाड़कर कहते हैं; और (तूने) भी अभेद सीधा जाना नहीं, इसलिए हमने (कहा कि) यह आत्मा अन्दर दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा, परन्तु तुझे अनुसरण योग्य नहीं। हमने कहा और तूने लक्ष्य में लिया (परन्तु) वह व्यवहारनय अनुसरण करने योग्य नहीं। आहाहा! चन्दुभाई!

मुमुक्षु : सुनना कुछ और समझना कुछ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनना कुछ ऐसा नहीं है; सुनना ही यह है। सुनने में व्यवहार से इसे कहा, सुननेवाले का लक्ष्य तो अभेद पर कराना है, दूसरा कोई उपाय नहीं। अभेद को सीधा जानता नहीं और अनादि से, अभेद क्या है—यह इसे अनुभव में नहीं; इसलिए इसे बताना है अभेद चिदानन्द भगवान वस्तु। यह ज्ञान का प्राप्त हो, श्रद्धा-माने, स्थिरता जिसमें हो, वह आत्मा। ऐसे तीन भाग पाड़कर कहा, परन्तु यह भाग पाड़कर कहा-वह वस्तु नहीं। समझ में आया?

ऐसे विपरीत अभिप्राय जो हैं, (अर्थात्) यह भेद है, वह आत्मा को लाभदायक है.... समझ में आया? व्यवहारनय का विषय आत्मा को लाभदायक है—ऐसा जो अभिप्राय, उसे शुद्ध चैतन्यस्वरूप के सन्मुख की दृष्टि से उसका नाश करना। समझ में

www.vitragvani.com

आया ? उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। देखो ! अब यह सम्यग्दर्शन व्यवहार और निश्चय दो में से कौन सा सम्यग्दर्शन होगा ? व्यवहार सम्यग्दर्शन है ही कहाँ ? यही सम्यग्दर्शन है, यही पुरुषार्थसिद्धि का उपाय है। यहाँ पुरुषार्थसिद्धि के उपाय की व्याख्या चलती है। समझ में आया ?

पुरुष शब्द से चैतन्यस्वरूप, पहले आ गया है वह। आत्मा चैतन्यस्वरूप है; रागस्वरूप या संयोगस्वरूप नहीं। ऐसे आत्मा की पर्याय में मुक्ति की—सुख की सिद्धि होना, उसका उपाय, उसे यहाँ पुरुषार्थसिद्धि-उपाय कहते हैं। उसका उपाय तो यह एक ही है। फिर कहेंगे अन्दर, **दूसरा कोई उपाय सर्वथा नहीं है।** अन्तिम लाईन, भावार्थ की अन्तिम लाईन। और बड़े अक्षर में छपाया है। समझ में आया ?

टोडरमलजी ने तो वस्तु की स्थिति का वर्णन बहुत सरस किया है परन्तु लोगों को—अभी के लोगों को उनकी स्वयं की पण्डिताई के समक्ष इनका अप्रमाण लगता है। स्वयं की दृष्टि आर्षप्रमाण नहीं, आर्षप्रमाण नहीं। आर्षप्रमाण इसलिए परन्तु आर्तपना नहीं ? '**ववहारोऽभूदत्थो**' यह आर्षवाक्य है। व्यवहार, वह अभूतार्थ है। अभूतार्थ अर्थात् आश्रय करनेयोग्य नहीं। उसके सन्मुख रहनेयोग्य नहीं; उससे विमुख होने योग्य है। फिर तो इसका स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया ?

सम्यग्दर्शन अर्थात् कर्म के निमित्त से हुए शुभाशुभभाव और संयोग से मिली चीज़, वह सब कर्म से मिली है और कर्म भी कर्म से मिला है, अन्दर आठ कर्म पड़े हैं। इन सबसे सहित माना है, इसका नाम पर्यायबुद्धि है, इसका नाम मिथ्याबुद्धि, इसका नाम मिथ्यादृष्टि। इससे रहित ज्ञायकस्वभावसन्मुख होकर, इनसे (विकार एवं संयोग से) रहित आत्मा है—ऐसा अभिप्राय करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन—पुरुष के सिद्धि की उपाय का पहला भाग है। कहो, समझ में आया ?

उसका मूल से विनाश करना.... भाषा है, देखो है न ! **निरस्य** नाश करके। **निरस्य**—क्या शब्द है ? .....समझ में आया ? दूसरी बात। वह सम्यग्दर्शन... अब (कहते हैं) **कर्मजनित पर्याय से भिन्न शुद्धचैतन्यस्वरूप को यथार्थतया जानना सम्यग्ज्ञान है....** देखो ! यह ज्ञान। राग को जानना, संयोग को जानना, शास्त्र को जानना, उसे

www.vitragvani.com

सम्यग्ज्ञान नहीं कहा। ये कर्मजनित विकल्प हैं या संयोगी चीज़ है, उनसे भिन्न शुद्ध चैतन्यमूर्ति अभेदस्वरूप, उसके स्वरूप का यथार्थरूप से जानना, वह ज्ञान अपने शुद्ध ज्ञेय को भलीभाँति पकड़कर वेदे-जाने, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

कर्मजनित पर्याय से भिन्न.... वास्तव में तो शास्त्र का जानपना, वह भी कर्मजनित पर्याय है, परालम्बी। उस व्यवहार की श्रद्धा, वह परजनित है। समझ में आया? इन सब परजनित भावों से भिन्न शुद्ध चैतन्यस्वरूप को, शुद्ध ज्ञानस्वरूप को यथार्थरूप से अन्तर में ज्ञायकपने का ज्ञान करना, इसका नाम सम्यग्ज्ञान—पुरुष की सिद्धि का दूसरा उपाय है। दूसरा अर्थात् द्वितीय अवयव-अंग। उपाय तो एक ही है, तीन होकर एक ही है। समझ में आया? कहो, रतिभाई!

वह पढ़ाई समझे बिना यह किस प्रकार समझे? पहले वह पढ़ा हो तो समझे या नहीं? एक व्यक्ति ने ऐसा प्रश्न किया, लो! कि वह पाँच, दश पढ़ा न हो तो यह समझे किस प्रकार? इसलिए वह पढ़ना, लाभदायक होगा। वह संसार का, हों! एक व्यक्ति ऐसा पूछता था। संसार की (पढ़ाई) वह पढ़े बिना इसे किस प्रकार ख्याल आयेगा? ऐसा। ऐई! वह तो-पढ़ाई तो ठीक, परन्तु यहाँ तो शास्त्र की ओर का परसन्मुख का बोध, वह भी मन्दराग से हुआ कोई सन्मुख, वह बोध भी सम्यग्ज्ञान नहीं।

सम्यग्ज्ञान तो, उस निमित्त के लक्ष्य से कुछ उघाड़ आदि हुआ, पर में हुआ—पर के लक्ष्य से (हुआ उघाड़), उन सब भावों से भिन्न शुद्ध चैतन्य अकेला अभेद चैतन्यस्वभाव, उसका अन्दर ज्ञान करना, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया?

अब आयी चारित्र की व्याख्या। देखो! ये निश्चय सम्यग्दर्शन और निश्चय सम्यग्ज्ञान दो हुई। 'दास!' अब चारित्र किसे कहना? यह विवाद अभी उठे, उसका सब स्पष्टीकरण इसमें। **कर्मजनित पर्यायों से....** देखो! वह शुभराग आदि कर्मजनित पर्याय है। महाव्रत के परिणाम, अणुव्रत के परिणाम ये सब कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुए उपाधिभाव हैं। इनसे **उदासीन होकर....** लो! मुनिपना! माँगीरामजी! आहाहा! भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव से भरा भण्डार, उसके सन्मुख की दृष्टि और पर से विमुखता की दृष्टि, वह सम्यग्दर्शन (है)। शुद्ध चैतन्यस्वरूप के सन्मुख का अन्तर्मुख का ज्ञान, उसे ज्ञान (कहते हैं) और रागादि

www.vitragvani.com

विकल्प तथा शरीर आदि की पर्यायें, ऐसे जो दया में निमित्त शरीर की पर्याय हो, भक्ति में भी यह शरीर की पर्याय पूजा में निमित्त हो—ये सब पर्यायें और राग से उदासीन होकर—हटकर, उदासीन अर्थात् वहाँ से हटकर **स्वरूप में अकम्प-स्थिर रहना....** जैसा शुद्धस्वरूप दर्शन में, प्रतीति में लिया है, जैसा शुद्धस्वरूप का ज्ञान, ज्ञान में किया है; ऐसे ही स्वरूप में—शुद्धस्वरूप में—राग से हटकर... राग से हटकर श्रद्धा-ज्ञान तो किया था, परन्तु अस्थिरता थी; अब उस राग के विकल्प से हटकर स्वरूप में—शुद्धता में स्थिर होना, इसका नाम चारित्र और इसका नाम मुनिपना है। कहो, समझ में आया इसमें? व्यवहार व्रत आदि, वे चारित्र नहीं-ऐसा कहते हैं।

पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य के विकल्प जो हैं, वे चारित्र नहीं; वे अचारित्र हैं। उनसे उदासीन होकर... उदासीन (अर्थात्) हटकर, इसमें आसन लगा देना—शुद्धस्वरूप में स्थिरता, सूरत लगा देना, इसका नाम भगवान परमेश्वर, पुरुष के उपाय का, पुरुष की सिद्धि के उपाय का चारित्रमार्ग कहते हैं। यह चारित्र! कहो! देह की क्रिया, वह चारित्र नहीं, महाव्रत आदि के शुभपरिणाम उत्पन्न हों, वह भी चारित्र नहीं। कहो, बल्लभदासभाई! परन्तु यह तो सब अभी बिना ठिकाने का, दर्शन बिना वे अकेले व्रत के परिणाम, वह हमारा चारित्र है (-ऐसा कहते हैं)। लो! कठिन अर्थात् कष्टदायक है, इसलिए कठिन है; इसलिए वे लोग इन्हें चारित्र नहीं मानते—ऐसा कहते हैं, भारी भाई! यह व्रत पालना, वह कष्टदायक है, कठिन है; इसलिए इन्हें चारित्र नहीं कहते। अरे... भगवान! जिसे दुःखदायक लगे, वे परिणाम ही मिथ्यात्व के हैं। चारित्र को दुःखदायक मानना, वह चारित्र को विपरीत माना है।

चारित्र तो आनन्ददायक है। चारित्र, आनन्ददायक है। भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप में रमे, रमे, चरे, जमे, स्थिर हो, वह तो आनन्द का अनुभव है, अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति का वेदन है। चारित्र, कष्टदायक नहीं होता। चारित्र को कष्टदायक माने, वह चारित्रगुण की विपरीत मान्यता-मिथ्यात्व है। आहाहा! क्या करना इसमें? ऐ... दास! मोटा पूरा बिल फिर गया है।

कहते हैं, भगवान आत्मा परमानन्द का समरसी चारित्रस्वरूप ही है। चारित्र अर्थात्

www.vitragvani.com

कि जैसे ज्ञायकस्वरूप है ज्ञान, वैसे चारित्र अर्थात् समरसस्वरूप आत्मा है, समरसस्वरूप वीतरागीघन है। ज्ञानघन है, वैसे वीतरागीघन है। उसमें स्थिर होना और हटना नहीं, इसका नाम भगवान, चारित्र कहते हैं। कहो, समझ में आया? अभी चारित्र किसे कहना—सुनने को न मिले और हो गया चारित्र। शोभालालजी! भगवान आत्मा शुद्ध परमानन्द का कन्द, रसकन्द, विज्ञानघन है। उसके सन्मुख की प्रतीति, उसके सन्मुख का ज्ञान और उसके सन्मुख में स्थिरता; राग से विमुख होना। कहो, समझ में आया?

कर्मजनित पर्यायों से उदासीन होकर.... उनसे उपेक्षा करके **स्वरूप में अकम्प-स्थिर रहना....** भगवान आत्मा समरसीबिम्ब, समरसीबिम्ब में स्थिर होना **सम्यक्चारित्र है।** वह सम्यक्चारित्र है। तीनों की व्याख्या बहुत स्पष्ट हो गयी। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः-तत्त्वार्थसूत्र।' इन तीनों की यह व्याख्या। समझ में आया? अभेद से भले बात की है, वस्तु तो ये तीन हैं।

इन तीन भावों का समुदाय.... ऐसा कहते हैं, तीनों होकर एक मोक्षमार्ग है; तीन मोक्षमार्ग नहीं, ऐसा। **इन तीन भावों का समुदाय ही उस जीव के कार्य सिद्ध होने का उपाय है।** पुरुषार्थसिद्धि-उपाय है न नाम? चौथा पद है न इसमें? **'पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम्'** चौथा पद, १५ वीं गाथा चलती है वह, **'पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम्'** इन तीनों भावों का, पर्याय एक है, उसका एकरूप **उस जीव के कार्य सिद्ध होने का....** देखो! **कार्य सिद्ध होने का उपाय है।** आत्मा का कार्य—मोक्ष, उसे सिद्ध होने का यह कारण है। मोक्ष ऐसा जो कार्य, उसका उपाय अर्थात् कारण। ये तीन कारण, वह एक ही उपाय है। समझ में आया?

श्रावक-आचार का वर्णन करना है, उसके पहले इस वस्तु का वर्णन किया। इस वस्तु के भान बिना इसे श्रावक के, व्रत के व्यवहार विकल्प जो उठते हैं, उन्हें व्यवहार भी नहीं कहा जाता यह भान बिना। ऐसा सम्यक् अनुभव और दृष्टि है, पश्चात् उसमें स्थिरता का अंश जरा आया है, उसे श्रावक के बारह व्रत का विकल्प उठता है, वह पुण्यभावरूपी व्यवहार है—ऐसा यहाँ सिद्ध करना चाहते हैं। समझ में आया? फिर व्रत में दोष लगे तो, अतिचार लगे तो टालना, यह सब व्याख्या विकल्प की है। आहा! समझ में आया?

www.vitragvani.com

इन तीनों भावों का समूह, वही इस जीव को कार्य अर्थात् मोक्षरूपी प्रयोजन सिद्ध होने का यह एक ही उपाय है। **दूसरा कोई उपाय सर्वथा नहीं है।** लो! इसमें एक ही उपाय है, दो नहीं—ऐसा नहीं आया इसमें? परन्तु यह तो आर्ष वाक्य कहाँ है—ऐसा कहते हैं। ऐसे के ऐसे। परन्तु यहाँ क्या कहते हैं? **'यत्तस्मादविचलनं विपरीताभिनिवेशं निरस्य सम्यग्व्यवस्य निजतत्त्वम् यत्तस्मादविचलनं स एव, स एव निश्चय पुरुषार्थ-सिद्धयुपायोऽयम्'** यहाँ तो अस्ति से बात करते हैं न! शैली अस्ति से की (है)। 'नमः समयसाराय' में भी संक्षिप्त बात की है न? समझ में आया? **दूसरा कोई उपाय सर्वथा नहीं है।** कहो, भाई! 'सर्वथा' जैनशासन में होता नहीं, ऐसा और आता है। बड़ा विवाद इसका। तो मोक्ष में पूर्ण आनन्द कदाचित् होवे नहीं, सर्वथा पूर्णानन्द होवे नहीं। इसका अर्थ क्या? (सर्वथा न होवे तो फिर), मिथ्यात्व का सर्वनाश न होवे, अचारित्र का सर्वथा नाश न होवे, मिथ्याज्ञान का सर्वथा नाश न होवे। सर्वथा का क्या अर्थ? सर्वथा आत्मा द्रव्य से शुद्ध है—ऐसा भी नहीं कहा जाए। कथंचित् शुद्ध और कथंचित् अशुद्ध-द्रव्य? पर्याय अशुद्ध है, परन्तु वस्तुरूप से कथंचित् शुद्ध और कथंचित् अशुद्ध—ऐसा होगा?

यहाँ तो (कहते हैं), **दूसरा कोई उपाय सर्वथा नहीं है।** एक ही आत्मा शुद्धस्वरूप से बिराजमान प्रभु, इस विकारी पर्याय के अभिप्राय से हटकर, स्वरूप की दृष्टि करना, विकारी पर्याय से हटकर स्वरूप का ज्ञान (करना), विकारी पर्याय से हटकर स्वरूप में स्थिर होना—यह एक ही आत्मा को मोक्ष के उपाय का कारण-उपाय है। कहो, बहुत अच्छा श्लोक आया है, बल्लभदासभाई! इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से मार्ग, वीतरागमार्ग में है नहीं। अन्य में तो है ही नहीं, अन्य में तो है ही नहीं।

दूसरा कोई उपाय.... अर्थात्? उपाय अर्थात् दूसरा मार्ग हुआ न? कारण। उपाय शब्द से (आशय) दूसरा कारण, मार्ग; इसलिए कोई दो कहे—निश्चयमार्ग और व्यवहारमार्ग। मार्ग अर्थात् कारण, मार्ग अर्थात् उपाय। तो यहाँ दूसरा कोई उपाय नहीं है अर्थात् दूसरा कोई मार्ग नहीं है। दूसरा कोई उपाय नहीं है कहो या दूसरा कोई मार्ग नहीं है कहो या दूसरा कोई कारण नहीं है-ऐसा कहो—दोनों एक ही हैं। 'उपाय' शब्द पड़ा है न अन्दर? **'पुरुषार्थसिद्धयुपायोऽयम्'** पुरुषार्थसिद्धि का कारण यह। पुरुषार्थसिद्धि का

www.vitragvani.com

हेतु यह। पुरुषार्थसिद्धि का मार्ग यह। इसे दूसरा मार्ग है नहीं। कहो, इसमें आता है या नहीं? यहाँ के तो सब 'हाँ' करते हैं। समझे बिना हाँ करते हैं। हमारे पण्डितजी को ऐसा ठहराते हैं। निमित्त की मुख्यता थी, वह तो पहले था, इन्होंने भी फिर बदल डाला। कौन जाने? विभंग, विभंग पहले नहीं, विभंग अर्थात् विपरीत भंग, ऐसा। विभंग अज्ञान, वह नहीं, विपरीत भंगवाला। कहो, समझ में आया इसमें?

'विपरीताभिनिवेशं निरस्य सम्यग्व्यवस्य निजतत्त्वम् यत्तस्मादविचलनं स एव, स एव' लो समझ में आया? **'पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम्'** लो! यह बड़ी..... **'स एव'** पुरुषार्थसिद्धि-उपाय मार्ग, उपाय अर्थात् मार्ग ऊपर का वजन है अभी। उपाय अर्थात् मार्ग, कारण, उपाय। यह एक ही मार्ग है, यह एक ही उपाय है, यह एक ही कारण है। कहो, समझ में आया?

पहले पद में सम्यग्दर्शन की व्याख्या, दूसरे में सम्यग्ज्ञान की, तीसरे में चारित्र की और चौथे में इन तीनों का एकपना एक ही मार्ग है—ऐसे चार पद कहे। लो, समझ में आया? भाई! रात्रि को बात चलती थी न? भाई! ये दो उपाय निरूपण, निरूपण किया करते हैं। क्या करे परन्तु लोगों को.... भारी अकुलाहट है। उन्हें फिर जवाब देने में रुकना, इसे फिर उसके लिये ढूँढ़ना और... काल ऐसा है न। कहो, शोभालालजी! ठीक आया न? यह स्पष्ट बात है।

एक ही मार्ग है, एक ही उपाय है, एक ही कारण है। कार्य का एक कारण है, मोक्षरूपी कार्य का एक कारण है। कौन? कि आत्मा शुद्धस्वरूप है, उसे विपरीत अभिनिवेशरहित सम्यग्दर्शन प्रगट करना, उसे विपरीत—पर के ज्ञान से रहित स्वरूप का ज्ञान करना, राग से उदासीन होकर स्वरूप में स्थिर होना—यह एक ही प्रकार का मोक्षरूपी कार्य का एक कारण है। कार्य के दो कारण यहाँ इनकार करते हैं, भाई! लो! यह तो वे (कहते हैं), दो कारण का एक कार्य, दो कारण का... आहाहा! उस कार्य का एक ही कारण है—ऐसा सिद्ध किया। वजुभाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो एक दूसरा होता है, व्यवहार के शास्त्रों में दूसरा—

www.vitragvani.com

व्यवहार होवे, उसका ज्ञान कराते हैं। यहाँ यह प्रश्न किया, भाई फूलचन्दजी ने लिखा ऐसा कि व्यवहार है, वह ज्ञान कराने के (लिये है), यह तुमने तुम्हारी कल्पना से लिखा है। व्यवहार ज्ञान कराने के लिये है—ऐसी कहाँ बात फैलाते हो? 'खानियाचर्चा' में लिखा है। उसका अर्थ कि यह वस्तु जानी है, तब एक रागादि अभी बाकी रहा है, शास्त्र का ज्ञान है, व्रत का विकल्प है, उसे व्यवहार कहते हैं, वह जानने में निमित्त कहते हैं अर्थात् इस उपादान का ज्ञान हुआ, तब उस निमित्त का ज्ञान होता है। करना, वह तो स्व-पर का ज्ञान ऐसा ही रह जाता है। उसे इसका ज्ञान होने पर ऐसा होवे, उसका ज्ञान वहाँ स्वतः रह जाता है, होता है। इससे उसका ज्ञान करनेयोग्य है—ऐसा कहने में आया। समझ में आया?

ज्ञान का स्वभाव तो स्व-परप्रकाशक है न! स्व का-शुद्ध का ज्ञान हुआ, तब अन्दर राग बाकी है, उसे व्यवहार समकित का आरोप, उपचार से निमित्त देखकर कहते हैं—ऐसा जानना। शास्त्र के ज्ञान का निमिततरूप से परालम्बी है, उसे निमित्तरूप से है—ऐसा जानना। वैसा यहाँ ज्ञान कराया, तो ज्ञान करना, वह कोई नया ज्ञान करना नहीं है। यह तो स्व का ज्ञान होने पर स्व-परप्रकाशक ज्ञान ही ऐसा प्रगट होता है। समझ में आया? (समयसार) ११ वीं गाथा में कहा, उसकी १२ में सन्धि है।

भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ तो अब उसे जाननेयोग्य अपूर्ण—कोई अधूरी दशा रहती है या नहीं? या पूर्ण हो गया है? पूर्ण का आश्रय करके दर्शन हुआ, पर्याय में पूर्ण हुआ नहीं; इसलिए पर्याय में अभी थोड़ी अशुद्धता है, शुद्धता के अंश पहले की अपेक्षा बढ़ते हैं—ऐसे सब भेद को जानना, वह प्रयोजनवान है। यह उसमें नहीं आया जानना वह? कहाँ आया? ऐसा कहते हैं। व्यवहार को जानना, वह भी है, यह बात तुम ही कहते हो, निमित्त का ज्ञान कराने (के लिये, यह तुम ही कहते हो)। यह क्या कहा? 'तदात्वे', 'तदात्वे' है न? कल दोपहर को 'तदात्वे' आया था न? कल आया था। लो! उस काल में जाननेयोग्य है। सत्य बात है।

आत्मा अपने स्वरूप का ज्ञान, श्रद्धा और स्थिरता करता है, तब कुछ बाकी रह जाता है, वह जाननेयोग्य रह जाता है। ऐसा ज्ञान का स्वभाव ही उस प्रकार का स्व-परप्रकाशक का खड़ा होता है। इसे जानना, ऐसा कोई नया ज्ञान प्रगट नहीं करना। समझ

www.vitragvani.com

में आया? परन्तु इस प्रकार से जानने की दशा ही (रह जाती है)। केवलज्ञानी का पूर्ण (दशा) होती है, पूरा है, इसलिए कहीं उन्हें (जाना हुआ प्रयोजनवान ऐसा नहीं रहता)। इसे यहाँ (निचले गुणस्थान में) थोड़ा-थोड़ा अर्थात् स्थिरता बढ़ती जाए या अशुद्धता घटती जाती है, वैसा इसे ज्ञान होता है, बस! समझ में आया?

जो इस उपाय में लगते हैं अब उनका वर्णन करते हैं:- एकदम तीनों की अलग बात करे न? अब मुनि की बात करते हैं। दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों में जिनकी लीनता है, उन्हें मुनि कहने में आता है। इसलिए इन तीनों की बात करके, तीनों की एकता की दशा हो, उनकी—मुनि की—बात करते हैं। समझ में आया? जो इस उपाय में लगते हैं, दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों, हों! तीनों, एक ही मार्ग है। **अब उनका वर्णन करते हैं।**

गाथा - १६

जो इस उपाय में लगते हैं, अब उनका वर्णन करते हैं:-

अनुसरतां पदमेतत् करम्बिताचारनित्यनिरभिमुखा।
एकान्तविरतिरूपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः।।१६।।

रत्नत्रय पद धारी मुनिवर तजते हैं नित पापाचार।
अहो अलौकिक वृत्ति धारते परद्रव्यों से रहें उदास।।१६।।

अन्वयार्थ : (एतत् पदम् अनुसरतां) इस रत्नत्रयरूप पदवी का अनुसरण करनेवाले अर्थात् इस पदवी को प्राप्त हुए (मुनीनां) मुनियों की (वृत्तिः) वृत्ति (करम्बिताचारनित्य-निरभिमुखा) पापक्रिया मिश्रित आचारों से सर्वथा पराङ्मुख तथा (एकान्तविरतिरूपा) परद्रव्यों से सर्वथा उदासीनरूप और (अलौकिकी) लोक से विलक्षण प्रकार की (भवति) होती है।

टीका : 'एतत्पदं अनुसरतां मुनीनां वृत्तिः अलौकिकी भवति।' - इस रत्नत्रयरूप पदवी को प्राप्त हुए महा मुनियों की रीति लौकिक रीति से मिलती नहीं है। वही कहते हैं। लोक, पापक्रियाओं में आसक्त होकर प्रवर्तन करता है; मुनि, पापक्रियाओं का चिन्तवन भी नहीं करते। लोक, अनेक प्रकार से शरीर को सँभाल और पोषण करता है परन्तु मुनिराज, अनेक प्रकार से शरीर को परीषह उत्पन्न करके उन्हें सहन करते हैं। और लोक को इन्द्रिय-विषय अत्यन्त मिष्ट लगते हैं, जबकि मुनिराज, विषयों को हलाहल विष समान जानते हैं।

लोक को अपने पास जन-समुदाय रुचिकर लगता है, जबकि मुनिराज दूसरों का संयोग होने पर खेद मानते हैं। लोक को बस्ती सुहावनी लगती है, किन्तु मुनि को निर्जन स्थान ही प्रिय लगता है। कहाँ तक कहें? महामुनि की रीति लौकिक रीति से विरुद्ध होती है। कैसी है मुनियों की प्रवृत्ति? 'करम्बिताचार नित्यनिरभिमुखा' - पापक्रिया सहित आचार से पराङ्मुख है। जिस प्रकार श्रावक का आचार, पापक्रिया से

www.vitragvani.com

मिश्रित है; वैसे मुनीश्वरों के आचार में पाप का मिश्रण नहीं है। अथवा 'करम्बित' अर्थात् कर्मजनितभाव मिश्रित आचरण से पराङ्मुख हैं, केवल निजस्वरूप का अनुभव करते हैं; इसलिये 'एकान्त-विरतिरूपा' अर्थात् सर्वथा पापक्रिया के त्यागी हैं अथवा एक निजस्वभाव के अनुभव से सर्वथा परद्रव्यों से उदासीन स्वरूप हैं। रत्नत्रय के धारक महामुनियों की ऐसी ही प्रवृत्ति होती है।।१६।।

गाथा १६ पर प्रवचन

अनुसरतां पदमेतत् करम्बिताचारनित्यनिरभिमुखा।
एकान्तविरतिरूपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः।।१६।।

लो! एकान्त आया इसमें, देखो! एकान्त है न? **'एकान्तविरतिरूपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः'** लो! माँगीरामजी! यह मुनि का व्याख्यान आया। ये कल पूछते थे। **इस रत्नत्रयरूप पदवी का अनुसरण करनेवाले....** भगवान आत्मा का अन्तर अनुभव का सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसमें राग से हटकर स्वरूप में रमणता (होना)—ऐसा जो निश्चयरत्नत्रयरूप परिणाम। वैसी **पदवी का अनुसरण करनेवाले अर्थात् इस पदवी को प्राप्त हुए (पुरुष) महा मुनियों की ऐसे महासन्तों की वृत्ति.... 'करम्बिताचारनित्य-निरभिमुखा' पापक्रिया मिश्रित आचारों से....** श्रावकों को अभी तो कुछ पापमिश्रित क्रिया होती है। इससे उन्हें यहाँ कहना चाहते हैं। **मुनि को पापक्रिया मिश्रित आचारों से सर्वथा पराङ्मुख...** बिल्कुल परान्मुख। **'एकान्तविरतिरूपा' परद्रव्यों से सर्वथा उदासीनरूप...** इसकी व्याख्या की। **'एकान्तविरति' परद्रव्यों से सर्वथा उदासीनरूप...** इसमें क्या अर्थ किया है? एकान्तविरति की व्याख्या की। समझ में आया? यह तो एकान्त आया न? इस ओर में एकान्त झुक गया है। **'एकान्तविरति' परद्रव्यों से सर्वथा उदासीनरूप और लोक से विलक्षण प्रकार की होती है।** दुनिया की अपेक्षा मुनियों की चारित्र की दशा अलौकिक, अलौकिक-दुनिया से अलग प्रकार की होती है। समझ में आया? एकान्त आया।

www.vitragvani.com

'विरतिरूपा' कहा है न ? विरति अर्थात् उदासीन लिया। १६ वीं गाथा में है न ? १६ वीं। विरति अर्थात् एकान्त नहीं, सर्वथा किया। इनने एकान्त और सर्वथा कहा है। सर्वथा अर्थ किया, एकान्त को सर्वथा कहा। एकान्त अर्थात् सर्वदा, सर्वथा उदासीनरूप, **'विरतिरूपा'** सर्व द्रव्यों से, ऐसा।

मुनियों की वृत्ति चारित्रदशा, अन्तर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सहित की अन्तर रमणता अलौकिक वृत्ति है, अलौकिक है। लोकोत्तर परिणति है। परद्रव्य से, रागादि से और समस्त परवस्तुओं से उदासीनरूप अलौकिक—लोक के विलक्षण प्रकार की—अन्तर मुनि की दशा होती है। उसे यह रत्नत्रय का उपाय परिणमित हुआ कहने में आता है। कहो, समझ में आया ?

देखो ! इस श्रावक में भी यह पहला लिया। पहले लेकर फिर कहते हैं कि ऐसा पालन न कर सके, उसे श्रावकपना होता है, ऐसा। इसके लिये यह बात पहले ली है। पूर्ण बताकर, पूर्ण के पालनेवाले ऐसे होते हैं। ऐसा न पाल सके, उसे श्रावकपना अंगीकार करना—ऐसा कहेंगे। इसलिए यह बात यहाँ उठाई है। समझ में आया ?

अहा ! यह तो परमेश्वरदशा ! मुनिदशा अर्थात् बाह्य में नग्नदशा हो, अन्तर में अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प हो, परन्तु उनसे उदासीन हैं—ऐसा यहाँ तो कहते हैं। शुभभाव से भी उदासीन हैं। अशुभभाव तो उन्हें होता नहीं, परन्तु जो उन्हें अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प की दशा उत्पन्न होती है और शरीर की नग्नदशा (होती है), उससे भी अन्तर में तो उदासीन है। समझ में आया ? अर्थात् उसकी उपेक्षा करके स्वभाव की अपेक्षा में स्थित हैं। आहा !

मुनि; मुनि अर्थात् ? जिन्हें गणधरदेव का नमस्कार पहुँचे। चार ज्ञान, चौदह अंग-पूर्व का (ज्ञान) जिन्हें अन्तर्मुहूर्त में प्रगट होता है। अन्तर्मुहूर्त में बढ़े, उनका जिन्हें नमस्कार पहुँचे, वह तो कैसी दशा ! भाई ! आहा ! गणधर, सीमन्धर भगवान के गणधर बिराजते हैं। वे भी जब विकल्प से नवकार में आवें, (तो कहते हैं) 'णमो लोए सव्व साहूणं, णमो लोए सव्व आयरियाणं, णमो लोए सव्व ऊवज्झायाणं !' अहो सन्त ! तेरे चरण में मेरा नमस्कार ! जो राजा-भगवान तीर्थंकर धर्मराजा—उनके दीवान, ऐसे परमेश्वर के

www.vitragvani.com

समीप में बैठे हुए, समीप में रहे हुए, जिन्हें केवलज्ञान प्राप्त करने की समीपता है ऐसे मुनि, गणधर भी कहते हैं, अहो! मुनि! तेरी अलौकिक परिणति है, तेरी अलौकिक दशा है! अन्तर दर्शन अनुभव, स्व का सम्यग्ज्ञान और स्वरूप में रमणता; शुभराग से भी उदासीन होकर, यह जो मोक्ष के कार्य के कारण का सेवन तू करता है, (वह) अलौकिक वृत्ति है! वहाँ लौकिकपना नहीं रहा। देखो! भाषा कैसी है? लौकिकपना नहीं। वह व्यवहार—जो रागादि है—वह तो लौकिक व्यवहार है। समझ में आया?

'**अलौकिकी भवति**'—ऐसा कहा है न? अलौकिक होते हैं, अलौकिक। यह राग का विकल्प कोई अलौकिक नहीं है। आहाहा! '**एकान्तविरतिरूपा अलौकिकी भवति**' वाह! वृत्ति, वृत्ति शब्द है न? देखो न! महामुनियों की वृत्ति शब्द पड़ा है। वृत्ति अर्थात् परिणति। है न? पाठ में ही है, देखो! १६ वीं गाथा का अन्तिम शब्द है-वृत्ति। '**मुनीनामलौकिकी वृत्तिः**' १६ वीं गाथा, अन्तिम पद। '**मुनीनामलौकिकी वृत्तिः**' मुनियों की अलौकिक परिणति है। आहाहा! समझ में आया? अलौकिक परिणति होती है—ऐसा लेना। मुनि अर्थात् अलौकिक वृत्ति। '**एकान्तविरतिरूपा भवति**' ऐसा। वाह! समझ में आया?

जिन्हें अतीन्द्रिय प्रचुर स्वसंवेदन (प्रगट हुआ है), अन्दर-आनन्द की दशा में रमते हैं, प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द की दशा में अन्दर जम गये हैं, पिण्ड-पिण्ड हो गये हैं—ऐसी अन्दर दर्शन-ज्ञानसहित की चारित्र की रमणता, ऐसी जिनकी अलौकिक परिणति है। उन्हें '**एकान्तविरतिरूपा**' दशा हो गयी है। सर्वदा उन्हें वही निरन्तर परिणति सदा ऐसी वर्तती है—ऐसा वापस कहते हैं। एकान्त का अर्थ भले सर्वदा कहा। उन्हें सर्वदा राग से निवृत्तिरूप अलौकिक परिणति—वीतरागी परिणति, दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्रचुर स्वसंवेदनसहित सदा परिणति अलौकिकी वर्तती है। यह अलौकिकीवृत्ति, वह चारित्र है। कहो, खोडीदासभाई! आहाहा! भाषा क्या की है? देखो न! लोक से विलक्षण प्रकार की। व्यवहार आदि विकल्प है, उससे यह तो विलक्षण है। समझ में आया? कहा न! व्यवहारनय लौकिक..... द्रव्यसंग्रह में लिया है। लोकोक्ति।

यह मुनिपना, इन तीन की एकता का समूह—दर्शन-ज्ञान-चारित्र। भगवान आत्मा

www.vitragvani.com

में जम गये हैं, जम गये हैं। ऐसे जमे हैं कि अन्तर से निकलना ही उन्हें नहीं रुचता। वे **'एकान्तविरति'**—सर्वदा उदासीनरूप हैं। किसी समय उदासीन और किसी समय कुछ, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। एकान्त एक पक्ष में उदासीनरूप से ही सदा स्थित हैं – ऐसा कहते हैं। आहाहा! उन्हें दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता का—मोक्षमार्ग का—यह कारण भाव, उस कार्य का कारण, उन मुनि को पूर्ण प्रगट हुआ होता है। उसे मुनि की वृत्ति कहने में आता है।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)